सी.एच.आर.आई.

अंक ४

जून २०१०

लोक पुलिस

जनतांत्रिक पुलिस के लिए

मासिक पत्रिका

‘परिवर्तन’ दिल्ली पुलिस की एक नयी पहल

परिवर्तन प्रोग्राम दिल्ली पुलिस का एक अभियान है जिसका प्रारम्भ 2005 में महिलाओं के खिलाफ बढ़ते अपराधों को रोकने के लिए किया गया था। उत्तर–पश्चिम दिल्ली में एक क्राईम मैपिंग निरीक्षण द्वारा यह पता लगा की कुछ क्षेत्र महिलाओं के खिलाफ अपराध में अत्यधिक संवेदनशील हैं। इन बढ़ती हुई अपराध दरों को देखते हुए परिवर्तन प्रोग्राम सबसे पहले इन्हीं क्षेत्रों में लागू किया गया। महिला बीट अधिकारियों को प्रशिक्षण देकर बीट पर नॉडल अफसर के तौर पर तैनात किया जाता है जो शिकायतों को पीड़ित महिलाओं के दर्वाजे पर ही जाकर सुन लेती हैं और फिर उचित कार्यवाही करती हैं। इसके अंतर्गत महिलाओं और लड़कियों को स्वयं प्रतिरक्षा के लिए स्कूलों तथा दूसरे संस्थानों में प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

इसके अलावा, प्रत्येक थाना क्षेत्र में कम से कम 20 स्थानीय महिलाओं की एक समिति बनाई जाती है, जिनके सामने स्थानीय महिलाएं अपनी समस्याएं रख सकती हैं। बाद में समिति, बीट अफसर को इसकी जानकारी देती है। उत्तरी जिला की एक महिला सब इंसपेक्टर ने पूरे प्रोग्राम का विवरण दिया और इस बात पर प्रकाश डाला कि 97 प्रतिशत बलात्कार के केसों में आरोपी पीड़ित के पहचान का ही होता है।

वर्तमान परिपेक्ष में परिवर्तन प्रोग्राम की कार्यप्रक्रिया तथा उद्देश्यों से संबंधित अधिक जानकारी के लिए उत्तरी जिला के डी.सी.पी. श्री सागर प्रीत हूडा से ज़ीनत मलिक ने बातचीत की।

वर्तमान समय में परिवर्तन प्रोग्राम कितने थानाक्षेत्रों में चल रहा है?

यह मुख्यरूप से उत्तर–पश्चिम जिलों में चल रहा है, जिसमें जहांगीरपुरी, अशोक विहार, मॉडल टाउन तथा शालीमार बाग आते हैं। हाल ही में हमने इसे बाहरी क्षेत्रों में जैसेः रोहिणी, पीतमपुरा व दक्षिणी दिल्ली के कुछ थानों में बढ़ाया है।

परिवर्तन किस प्रकार काम करता है?

इस प्रोग्राम को एक वैज्ञानिक तथा नियमित प्रक्रिया के तौर पर देखना चाहिए जिसका मकसद महिलाओं के खिलाफ अपराधों को सीमित करने की कोशिश करना है न कि यह उनके खिलाफ हो रहे सभी प्रकार के अपराधों को समाप्त करने का श्रोत है। इस प्रोग्राम से जुड़ी गतिविधियों को पूरा करने में आने वाली कठिनाईयों को ध्यान में रखते हुए हम इसकी सफलता का कोई निश्चित आंकड़ा नहीं दे सकते इसी वजह से इसे एक प्रक्रिया के रूप में समझना होगा, क्षेत्र की आवश्यकता के अनुसार इसे लागू किया जाता है।

यह प्रोग्राम किस प्रकार की कठिनाईयों को संबोधित करता है?

इस प्रोग्राम का केन्द्र बिन्दु है महिलाओं के विरूद्ध पारिवारिक उत्पीड़न, सार्वजनिक स्थानों तथा कार्यस्थल पर उत्पीड़न, घरेलू हिंसा तथा यौन उत्पीड़न जैसे अपराध।

यह प्रोग्राम किस हद तक इन मुद्दों को रोक पाया है?

यह प्रोग्राम 2002–2005 के बीच महिलाओं के खिलाफ तेजी से बढ़ते अपराधों के मद्देनजर अस्तित्व में आया। हमने मुख्य कठिनाईयों की पहचान क्राईम मैपिंग प्रक्रिया के द्वारा की तथा संसाधनों को मोड़कर स्थिति को नियंत्रित किया। जो आंकड़े हमें 2005 के बाद मिले हैं उसके अनुसार महिलाओं के प्रति अपराधों में धीमे तौर पर परन्तु स्पष्ट कमी आई है, जिसका अर्थ है कि इस प्रोग्राम की योजना सफल रही।

श्री सागर प्रीत हूडा

महिलाओं के प्रति क्रूरता जैसे अपराध किसी खास वर्ग से जुड़े नहीं होते, तो क्या यह प्रोग्राम पॉश इलाकों में रहने वाले पीड़ितों तक पहुंच रहा है?

जैसा कि मैंने बताया, यह प्रोग्राम क्षेत्र की मांग के अनुसार लागू किया जाता है तथा वर्तमान समय में यह किसी पॉश इलाके में नही चलाया जा रहा है। जहां तक ‘‘क्रूरता’’ जैसे मामलों के संबोधन की बात है तो पुलिस का फोकस आमतौर पर संगीन मामलों तक ही सीमित होता है और यह प्रोग्राम भी अधिकतर यौन उत्पीड़न तथा दूसरे उत्पीड़नों पर ध्यान देता है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि साधारण क्रूरता का मामला घरेलु हिंसा कानून के अन्तर्गत आता है, जिसमें पुलिस की नहीं बल्कि सुरक्षा अधिकारी की आवश्यकता पड़ती है । जबसे सामाजिक कानून, जैसे घरेलु हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा का अधिनियम 2005 बनाया गया है, घरेलु हिंसा जैसे अपराधों के प्रति स्थिति बदल गई है। इससे पहले भी उच्चतम न्यायालय ने कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए दिशा–निर्देश जारी किया है, भारतीय दण्ड संहिता की धारा ‘498 क’ का अस्तित्व मे आना और हाल ही में सेंट्रल दिल्ली में ‘एंटी स्टाकिंग सेल’ की स्थापना जैसे कानूनों के आने के बाद पुलिस को भी इनके बारे में संवेदनशील बनाना हमारा मुख्य काम है।

महिलाओं के प्रति घरेलु हिंसा के बढ़ते मामलों को देखते हुए, इससे निपटने के लिए क्या सुझाव हैं?

बहुत सी महिलाएं केस दर्ज करना नहीं चाहती हैं केवल पुलिस से सुझाव चाहती हैं। ऐसी महिलाऐ ई–मेल द्वारा या व्यक्तिगत रूप से, पुलिस से, वकीलों से तथा संस्थाओं से सलाह ले सकती हैं। समय की आवश्यकता है कि महिलाओं के प्रति अपराधों को रोकने वाले कानूनों का पुनः निरिक्षण हो और संस्थाओं तथा पुलिस से फीडबैक लेकर उसके अनुसार कानूनों में बदलाव लाया जाए।

परिवर्तन प्रोग्राम को लागु करने में किस प्रकार की दिक्कतें आ रही हैं?

मसला है लोगों के काम करने तथा इसमें मदद करने के लिए प्रशिक्षण देने का। हम जागरण संस्था से जुड़े हैं जो नृत्य–नाटिका द्वारा जागरूकता फैलाता है। इनके पास केवल एक ग्रुप है जिसको हमें प्रत्येक स्थान पर इस्तेमाल करना पड़ता है, इस कारण हमें जागरूकता फैलाने में दिक्कत आती है।

आपने ध्यान दिया होगा कि पिछले कुछ अंकों से हमने किसी ऐसे पुलिस अधिकारी का साक्षात्कार प्रस्तुत किया है जिसने कुछ नया और अलग किया हो। हम खासतौर से इस बात को मान्यता देते हैं कि पुलिस सुधार के लिए पहल कर रही है, अपने बर्ताव को बदलने की कोशिश कर रही है, जनता में विश्वास बढ़ाने की तथा अपराधों को नियंत्रित और कम करने की भी कोशिश कर रही है। यह बहुत सराहनीय है। अगर आपके थाने में भी ऐसी ही कोई शुरूआत की गई है तो हमें बताएं, हम आपकी कहानी भी ‘लोक पुलिस’ में शामिल करना चाहेंगें।

दिल्ली का पुलिस शिकायत प्राधिकरण

कुछ महीनों पहले केन्द्र ने पुलिस शिकायत प्राधिकरण स्थापित करने की घोषणा एक मेमो द्वारा की। हांलाकि, ऐसा उच्चतम न्यायालय के प्रकाश सिंह केस में दिए गए निर्देश के 4 साल बाद किया गया है। फिर भी, अगर इसकी घोषणा और अमल में किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जाता है तो यह एक सराहनीय तथा समर्थन योग्य कदम है। पुलिस शिकायत प्राधिकरण का दायित्व है एक बाहर से निगरानी रखने वाली बॉडी की तरह काम करना जो पुलिस के खिलाफ शिकायत की जांच करेगी। इसके कार्यक्षेत्र को बढ़ाकर इसमें पुलिस से जुड़े संगीन मामालों को पुलिस द्वारा कैसे संचलन किया जा रहा है इस बात का निरीक्षण और मानीटर करना भी शामिल किया जा सकता है।

पुलिस शिकायत प्राधिकरण में एक अध्यक्ष और तीन सदस्य शामिल होंगे। इनकी चयन प्रक्रिया के बारे में मेमो कहता है "प्रधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति, संबन्धित संघ राज्य के प्रशासक द्वारा की जा सकती है"। मेमो अध्यक्ष और सदस्यों में से किसी को भी कार्य अवधि की सुरक्षा नहीं प्रदान करता है तथा प्रशासक को अपर्याप्त आधार पर किसी भी सदस्य को हटाने की शक्ति प्रदान करता है। प्राधिकरण के गठन की यह परेशानी प्रत्यक्ष रूप से इसकी स्वतंत्रा को प्रभावित करेगी। शिकायत एजेंसी, कार्यकारिणी और पुलिस के प्रभाव के बगैर काम करे, इस बात को सुनिश्चित करने के लिए सदस्यता और चुनाव प्रक्रिया की स्वतंत्रता के बारे में कोई नियंत्रण और संतुलन नहीं बनाया गया है।

हमारी मुख्य चिंता यह है कि मेमो प्रधिकरण की अध्यक्षता के लिए एक सेवानिवृत जज या सिविल सर्वेंट की नियुक्ति का विकल्प देता है जबकि अदालत ने साफ़ तौर से एक सेवानिवृत जज को ही प्राधिकरण अध्यक्ष नियुक्त किए जाने की बात कही थी। हमारे विचार में भी एक सिविल सर्वेंट से बेहतर अध्यक्ष एक सेवानिवृत जज ही साबित होंगे क्योंकि प्राधिकरण का काम अर्द्ध न्यायिक तरीके का है और ख़ास तौर से पुलिस द्वारा मानव अधिकार उल्लंघन के मामलों से जुड़ा है।

यह गठन इस ओर भी इशारा करता है कि दूसरे सदस्यों का चयन विभिन्न क्षेत्रों से सेवानिवृत अफसरों के पूल में से किया जाए, जिनमें सेवानिवृत पुलिस अफसर भी शामिल होंगे। इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि पुलिस अफसरों द्वारा पुलिस के ही खिलाफ शिकायत की जांच में शामिल होना, जांच के संतुलन को आरोपी के पक्ष में कर सकता है। हांलाकि इसके बारे में यह तर्क दिया जाता है कि, अंदरूनी मामलों का अनुभव रखने के कारण पुलिस अफसर, प्राधिकरण का काम बेहतर ढंग से कर पाएंगे। लेकिन हम इस तर्क को नहीं मानते हैं क्योंकि आवश्यकता के अनुसार विशेषज्ञ की राय वैसे भी ली जा सकती है। अगर इस प्राधिकरण को अपना लक्ष्य पूरा करना है तो, इसे सेवानिवृत सरकारी अफसरों तथा स्वतंत्र सिविल सोसाईटी सदस्यों के बीच चयन में एक साफ संतुलन स्थापित करना होगा। इनमें अनिवार्य रूप से आधे सदस्य सेवानिवृत सरकारी अफसरों में से हों और आधे सिविल सोसाईटी के सदस्य हों।

साथ ही सदस्यों की चयन प्रकिया ऐसी हो जो पारदर्शिता और निष्पक्षता को दर्शाता हो। लेकिन, वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है क्योंकि न तो चयन का कोई साफ आधार सुनिश्चित किया गया है और न ही कोई स्वतंत्र चयन पैनल बनाया गया है जो सदस्यों का चुनाव करे। ऐसे में आज की तस्वीर यह है कि जो लोग सरकारी अफसरों के खिलाफ शिकायतें सुनेंगे, वे अपने पद के लिए सरकार के कृतज्ञ होंगे।

पुलिस पर निगरानी रखने वाली दूसरी एजेंसियों के मौजूद होने के बावजूद, पुलिस शिकायत प्राधिकरण कई आवश्यकताओं को पूरा करेगा। पहली, वैधानिक सुरक्षाओं के बावजूद पुलिस द्वारा लगातार होने वाली गलतियों को रोकना। दूसरी, पुलिस के भीतर प्रबंधन, निरीक्षण, अनुशासन जैसी कमियों को उजागर कर उन्हें ठीक करना। तीसरी, एक ऐसी स्वतंत्र बॉडी का अस्तित्व में आना जो सालों से चले आ रहे पुलिस दुर्व्यव्हार के पैटर्न को समझे और सुधार के बारे में अपनी राय राजनैतिक कार्यकारिणी को दे।

पुलिस शिकायत प्राधिकरण को केवल संगीन शिकायतों पर जांच करने की ही शक्ति नहीं होनी चाहिए बल्कि इसे जनता द्वारा पुलिस के खिलाफ की गई शिकायतों को आन्तरिक तौर पर सम्भालने के ढ़ग का निरीक्षण करने तथा इसकी रिपोर्ट तैयार करने की जिम्मेदारी भी होनी चाहिए। साथ ही, इसे शिकायतों की जांच के बाद केवल एफ.आई.आर. दर्ज करने या विभागीय जांच प्रारम्भ करने जैसे निर्देश देने की अलावा आवश्यकता पड़ने पर लोगों को बुलाने तथा दस्तावेजों की जांच करने, केन्द्र और संघ राज्यों की सरकारों तथा संसद के समक्ष अपनी जांच और निरीक्षण के बारे में सामयिक रिपोर्ट पेश करने जैसी शक्तियां भी प्राप्त होनी चाहिए।

हमें इस बात की चिन्ता है कि शिकायत प्राधिकरण की शक्ति को मंत्रालय के मॉडल में कम कर दिया गया है। मेमो कहता है कि प्राधिकरण के निर्देश 'साधारणतः बाध्य होंगे' जब तक कि संघ राज्य इसके परिणाम से असहमत न हो। यह अदालत के उस निर्देश का उल्लंघन है जो साफ कहता है कि 'प्राधिकरण की सिफारिश बाध्यकारी होगी'। बाध्यकारी शक्तियों के बगैर प्रशासनिक शक्तियों द्वारा परिणामों से असहमति की स्थिति में शिकायत प्राधिकरण अपंग हो जाएगा।

उच्चतम न्यायालय के पुलिस सुधार पर निर्देशों को लागू करने की गृह मंत्रालय की पहल से जहां प्रोत्साहन मिला है, वहीं हमें इस बात की चिन्ता है कि यह प्राधिकरण उच्चतम न्यायालय के निर्देशों को बिल्कुल नहीं मानता, खासतौर पर न्यायालय के उद्देश्यों को पूरा नहीं करता।

एक प्रजातंत्र में राज्य के प्रत्येक संस्थान को अपनी शक्तियों पर संतुलन तथा नियंत्रण स्थापित करना होता है और इसे अपने कार्यों की जांच के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। पुलिस को साधारण से अधिक जांच पड़ताल और आलोचना को स्वीकार करना चाहिए क्योंकि यह नागरिकों के लिए हिंसा के खिलाफ अकेली प्रतिरोधक शक्ति है। इससे जन संतोष सुनिश्चित हो सकेगा तथा यह इस बात की गारंटी भी देगा कि पुलिस जैसी प्रतिरोधक शक्ति आवेश में काम नहीं करती है। यही इसकी आधारभूत परिकल्पना है। एक कमजोर प्राधिकरण, पुलिस की कमियों को उजागर करने की एक और असफल कोशिश होगी। इससे जनता में पुलिस के प्रति अविश्वास की भावना, जिस पर दशकों से ध्यान नहीं दिया गया है, और बढ़ेगी। सबसे अहम बात यह है कि इससे पुलिस के प्रति जनता के कम होते हुए विश्वास में और गिरावट आएगी जिसका परिणाम होगा, जनता से सहयोग में कमी। यह असहयोग पुलिस की नागरिकों के लिए आतंकवाद तथा अपराधों से अधिक सुरक्षित दिल्ली बनाने की योग्यता को कम करेगा और ऐसा शिकायत प्राधिकरण केवल सरकारी खजाने पर बोझ बढ़ाएगा।

— परंतप दास

पुलिस के कार्यकौशल–कितने उपयोगी

यह बात जोरों से कही जा रही है कि भारत की जेलों में बहुत भीड़ है क्योंकि पुलिस के द्वारा ऐसी ढ़ेरों गिरफ्तारियां की जाती हैं जो गैर–ज़रूरी हैं। दूसरी ओर, जनता का भी भरी दबाव है कि अपराध के मामले में सख्ती से पेश आया जाए, ऐसा लगे कि तत्कालिक समस्या का समाधान हो गया है।

अपराध दरों में तथा आम जनता में अपराधों के कारण भय में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। पुलिस की वर्तमान कार्यक्षमता से लोगों को कोई उम्मीद नहीं है। दूसरी ओर पुलिस का दावा है कि वे अपराध को हल करने की हर मुमकिन कोशिश कर रही है, लेकिन यह कोशिश काफी नहीं है। अपराध दरों में गिरावट नहीं आ रही है और जनता में भारी असुरक्षा की भावना है।

पुलिस की आम शिकायतों में से एक है कि नागरिक जांच–पड़ताल में उनकी मदद नहीं करते और न ही अपराध होने पर कोई गवाही देने को सामने आता है। पर इसके लिए भला जनता को कैसे दोषी ठहराया जाए? आम आदमी को डर लगता है कि कहीं वह इस व्यवस्था में फंस न जाए। खुद फंस जाने के डर के कारण जांच पड़ताल में कोई पुलिस की मदद नहीं करना चाहता। लेकिन यह डर निराधार नहीं है।

पुलिस के लिए गवाहों को थाने में तलब करना और उसके बाद उन्हें घंटों बिठाए रखना आम बात है । पुलिस को निस्संदेह गवाहों को थाने में बुलाने की शक्ति प्राप्त है, लेकिन इस शक्ति की सीमा भी निश्चित है। यह शक्ति केवल उन्हीं गवाहों को बुलाने के लिए दी गई है जो मामले के तथ्यों और हालातों से परिचित हों। गवाह कोई आरोपी नहीं है बल्कि हकीकत में वह जांच–पड़ताल में पुलिस की मदद कर रहा है। कानून के अनुसार पुलिस किसी गवाह को केवल एक लिखित आदेश द्वारा ही बुला सकती है। कानून मुंह जबानी आदेश देने की इजाजत नहीं देता। अक्सर हमने कई बार महिलाओं तथा 15 साल से कम उम्र के बच्चों को थाने में बुलाए जाते देखा है जबकि कानून इस बारे में बिल्कुल स्पष्ट है। इसके अनुसार, केवल पुछताछ के लिए महिलाओं और 15 साल से कम उम्र के बच्चों को थाने नहीं बुलाया जा सकता है। यह पूछताछ केवल उनके घरों में ही की जा सकती है। लेकिन कितने लोग हैं जो इस बात को जानते हैं और कितने अधिकारी हैं जो इस कानून का पालन करते हैं?

कानून यह भी कहता है कि थाने में आने वाले गवाहों को वहां तक आने में खर्च हुए पैसे का भुगतान भी किया जाए। पर आमतौर पर होता यह है कि किसी को भी पूछताछ के लिए तलब कर लिया जाता है, उन्हें गैरकानूनी तरीके से घंटों बिठाए रखा जाता है, बार–बार बुलाया जाता है और उन्हें तबतक परेशान किया जाता है जबतक उनके मन में यह नहीं आ जाता कि वे पुलिस के पास फटकेगें भी नहीं।

ऐसा भी बहुत बार होता है कि पूछताछ गालियों, धमकियों और कभी–कभी यातना तक में बदल जाती है। इस अग्नि–परीक्षा का अंत यह भी हो सकता है कि पुलिस गवाह को गिरफ्तार भी कर ले। कभी–कभी मनमाने तरीके से किसी को बंधक बना लिया जाता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि पिता खुद को पुलिस के सामने पेश करे, बेटे को उठा लिया जाता है। रात दर रात भीडों को मारती–दौड़ाती, लोगों को खम्बों से बांध कर पीटती, किसी मामूली चोर को मोटरसाईकिल के पीछे बांध कर शहर भर में घुमाती हुई, किसी चुड़ैल ठहराई गई औरत को भीड़ द्वारा सिर मुंडवाने में लोगों की मदद करती हुई पुलिस की तस्वीरें अखबारों में अकसर देखने को मिल जाती हैं और इन्हें झुठलाया नहीं जा सकता है।

पुलिस बार बार दावा करती है कि उनपर गिरफ्तारियों के लिए बड़े अफसरों का दबाव है, लेकिन इन अफसरों से पहले उनकी जवाबदेही कानून के प्रति है। किसी को गिरफ्तार करने के लिए पर्याप्त आधार होना चाहिए, एफ.आई.आर. में नाम आ जाने भर से ही कोई व्यक्ति गिरफ्तारी का पात्र नहीं हो जाता। पुलिस के लिए यह आवश्यक है कि वह पहले पूछताछ करे जांच करे, सबूत एकत्रित करे और केवल तभी गिरफ्तारी करे जब उसके पास पर्याप्त सबूत हों।

एक बार किसी को गिरफ्तार करने के बाद आवश्यक है कि उसे उस पर लगे आरोपों के बारे में बताया जाए, उसके परिवार को इस गिरफ्तारी की जानकारी दी जाए और गिरफ्तारी के चौबीस घंटे के अंदर उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाए। यह सब बातें गिरफ्तार व्यक्ति को यातना से बचाने के लिए हैं, पर पुलिस जान बूझकर इनकी अनदेखी करती है।

आज जेलों में 70 प्रतिशत अपराधी ऐसे हैं जो विचाराधीन हैं और जिन्हें गिरफ्तार ही नहीं किया जाना चाहिए था। इससे जेलों में केवल भीड़ बढ़ी है न कि अपराध कम हुआ है। क्यों अपराध दरों में बढ़त हो रहीं है? क्यों आम आदमी की मुख्य चिन्ता और डर बढ़ाती अपराध दरें बनी हुई हैं? क्यों लोगों में असुरक्षा की भावना व्याप्त है? ऐसा इसलिए है कि पुलिस असली अपराधियों को ढुंढ़ने में असमर्थ है, वे आजाद घूमते हैं और अपना काम करते रहते हैं। गुनाह मनवाना, यातना देना, गैर–कानूनी हिरासत और अपनी बात साबित करने और सूचना एकत्रित करने का यह तरीका ही इनके जांच–पड़ताल के तरीकों में सुधार के आड़े आ रहा है। जबतक इन तरीकों पर अंकुश नहीं लगाया जाएगा, अपराध बढ़ते रहेंगे। फौरी तरीकों से स्थायी हल नहीं निकलते। इससे थोड़ी देर के लिए जनता को संतुष्ट किया जा सकता है क्योंकि वह अपराधों से डरती है और जानती है कि पुलिस की मौजूदा अनुपयोगी हालत में वह उससे कोई और उम्मीद कर भी नहीं सकती है।

– नवाज़ कोतवाल

लोक पुलिस और आप

पुलिस के बारे में बहुत खबरें छपती हैं। अगर अखबार उठाकर देखें तो जरूर कोई न कोई खबर मिलेगी जिसमें पुलिस की भूमिका पर सवाल उठाए गऐ होंगे।

पुलिस को अपनी बात कहने का कभी मौका नहीं मिलता। अगर मिलता भी है तो यह केवल 10 प्रतिशत ऊपर के अधिकारियों तक सीमित है। वह भी शायद अपनी बात सेवा निवृति के बाद ही कह पाते हैं।

भारत में लगभग 14 लाख पुलिस कर्मचारी हैं इसमें तकरीबन 88% वे हैं जिन्हें कांस्टेबुलरी कहा जा सकता है यानि असिस्टेंट सब इंस्पेक्टर से नीचे दर्जे के कर्मचारी। कांस्टेबुलरी पुलिस के कामकाज की रीढ़ की हड्डी है। यही वह लोग हैं जिन पर पुलिस व्यवस्था की नींव टिकी है।

आप, जो पुलिस विभाग में 24 घंटे काम करते हैं, आप क्या सोचते हैं? पुलिस व्यवस्था में कहां और कैसे सुधार की जरूरत है? पुलिस कैसी होनी चाहिए? आप किस तरह की पुलिस का हिस्सा बनना चाहेंगे?

लोक पुलिस एक कोशिश है आपकी बात लोगों व विभाग के अधिकारियों तक पहुंचाने की। आप अपनी राय या सुझाव नाम सहित या अज्ञात निम्नलिखित पते पर भेज सकते हैं:

प्रधान संपादकः ज़ीनत मलिक
लोक पुलिस, बी–117, सैकंड फ्लोर, सर्वोदय एन्कलेव, नई दिल्ली–110017

पुलिस समाचार – हर कोने की हलचल

मेहमानों के साथ मुश्किल और बढ़ जाती है

मुबंईः रघु मोरे (बदला हुआ नाम) के पिता एक पुर्व कांस्टेबल हैं। मोरे ने पुलिस सेवा को इसलिए चुना क्योंकि उसके परिवार को पिता के रिटायरमेंट के बाद वर्ली स्थित क्वार्टर को खाली न करना पड़े। मोरे के अनुसार "क्वार्टर इतना छोटा है कि अगर घर की औरतों को कपड़े बदलने हों तो हमें बाहर निकलना पड़ता है। जब मेहमान आ जाते हैं तो परेशानी और बढ़ जाती है। हम किराये का मकान नहीं ले सकते क्योंकि इसका अर्थ होगा मुंबई से बाहर जाना"। मुंबई के 38,000 कांस्टेबुलरी के लिए केवल 18,500 क्वार्टर हैं जिनमें से 1500 पुलिस क्वार्टर खाली पड़े हैं।

मुंबई पुलिस से सूचना के अधिकार के तहत मांगे गये जवाब में बताया गया कि 180 वर्ग मीटर के एरिया में बने क्वार्टर खाली पड़े हैं। इनमें से कुछ रेलवे स्टेशन, बस स्टॉप तथा बाजार से जुड़े हुए नहीं हैं। दूसरी ओर यह भी बताया गया कि तकरीबन 13,000 क्वार्टरों की कमी है जबकि केवल 42,00 क्वार्टर ही बनाये जा रहे हैं। डी.सी.पी.(हेड क्वार्टर–1) ने इस बात की पुष्टि की कि पुलिसकर्मी इन क्वार्टरों से शर्माते हैं "ये क्वार्टर छोटे हैं आजकल पुलिसकर्मी इतने छोटे घरों में नहीं रहना चाहते हैं"। उन्होंने कहा कि ये काफी पुराने बने हैं, लेकिन नये क्वार्टरों में अधिक जगह है।

जहां हम नये हथियार खरीदने की बात करते हैं, साल में दो बार डी. जी. कार्यालय को रंग करवाने पर पैसे खर्च करते हैं, आई.पी.एस. अधिकारियों के क्वार्टर अच्छे खासे हैं वहीं मुंबई जैसे महानगर में कांस्टेबुलरी झुग्गीनुमा क्वाटरों में रहने के लिए मजबूर हैं ।

(सौजन्यः हिन्दुस्तान टाईम्स ई पेपर 24 मई 2010)

दांता अदालत – आरोपी का नार्को टेस्ट कराने पर मनाही

पालनपुरः बनस्कांथा जिले के तालुका दांता में न्यायिक मजिस्ट्रेट ने सी.आई.डी. अपराध शाखा की, तुलसीराम फर्जी मुठभेड़ केस के 7 आरोपी पुलिसकर्मियों का नार्को टेस्ट कराने की अर्जी को खारिज कर दिया ।

डी.एस.पी. बनस्कांथा ने कहा कि सी.आई.डी. अपराध ने अदालत में तुलसीराम प्रजापति जो कि सोहराबुदीन का सहयोगी था और जिसकी मौत बनस्कांथा और राजस्थान पुलिस द्वारा मुठभेड़ में हुई थी, के 7 आरोपियों के नार्को टेस्ट तथा लाई डिटेक्टर टेस्ट करवाने की मांग की थी। बचाव पक्ष के वकील ने कहा कि यह मांग उच्चतम न्यायालय के उस निर्देश के अनुसार निराधार थी जहां यह कहा गया है कि 'बिना आरोपी की मर्जी के कोई नार्को टेस्ट तथा लाई डिटेक्टर टेस्ट नहीं करवाया जा सकता है और इस केस में आरोपी पुलिसकर्मी ऐसे कोई टेस्ट नहीं कराना चाहते थे।

जांच के ऐसे तरीकों पर निर्भर होने के बजाए पुलिस को चाहिए की वह अपने पुराने और बुनियादी तरीकों को बेहतर बनाने की ओर ध्यान दे।

(सौजन्यः टाईम्स ऑफ इन्डिया डॉट कॉम 26 मई 2010)

दलित पुलिसकर्मी को गाली देने पर 5 साल की सज़ा

लखनऊः बहराईच की अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए विशेष अदालत ने बहुजन समाजवादी पार्टी के एक नेता और एक वकील को आर्म्स एक्ट, अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए विशेष कानून तथा अपराधिक धमकी देने के लिए दोषी ठहराया है।

विशेष अदालत ने दिलीप वर्मा तथा कुलदीप वर्मा को 5 वर्षों की कठोर सजा सुनाई है तथा दोनों पर 25, 25 हजार रूपये का जुर्माना भी लगाया है। दिलीप वर्मा माहसी चुनाव क्षेत्र से तीन बार विधायक रह चुके हैं।

नवम्बर 2005 में एक दलित पुलिस कांस्टेबल, शिव सहाय ने दिलीप तथा एक अंजान व्यक्ति के खिलाफ दरगााह शरीफ थाने में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307, 504, 506 के अन्तर्गत और लाइसेंसी हथियार के दुरूप्योग तथा उसकी जाति का नाम अपमान करने के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज कराई थी। इस कांस्टेबल ने कुलदीप को रोक कर गाड़ी के कागज देखने की मांग की थी, जिसपर वह भड़क गया था। फिर विधायक के साथ वापस आकर जान से मारने की धमकी तथा जाति की गाली दी थी।

इस तरह के मामलों में दोष सिद्ध होने और राजनैतिक ताकत का गलत उपयोग करने से लोग आवश्य ही बचेंगे।

(सौजन्यः इंडियन एक्सप्रेस न्युज डॉट कॉम 28 मई 2010)

यातना विधेयक पुलिसकर्मियों को बचाव का अवसर देता है

नई दिल्लीः अपने कानूनों को संयुक्त राष्ट्र के कन्वेनशन ऑफ टॉर्चर के अनुरूप बनाने के भेष में, वास्तव में भारत ने सरकारी अधिकारियों के खिलाफ ऐसे मामलों में शिकायत करने के लिए 6 महीनों की विशेष पाबंदी लगाकर उनके लिए दण्ड–मुक्ति का अवसर बढ़ा दिया है। यह प्रावधान प्रिवेन्शन ऑफ टॉर्चर बिल में निहित है, जिसे लोकसभा में 6 मई की रात को पास किया गया। हांलाकि इस पर हुई संक्ष्प्ति बहस में भाग लेने के लिए विपक्षी पार्टी का कोई भी सांसद मौजूद नहीं था। इस बिल को अगले सत्र में राज्यसभा में पेश किया जाना है।

वर्तमान कानूनों को सख़्त बनाने के बजाये यह विधेयक सुरक्षाकर्मियों द्वारा उनके हिरासत में संदिग्ध व्यक्तियों को संगीन चोट पहुंचाने के आरोपियों के लिए रियायत की मांग करता है। यह मांग की अदालत कथित अपराध का संज्ञान केवल 6 महीनों के बाद ही ले सकती है, न केवल कन्वेनशन ऑफ टॉर्चर के विरूद्ध है बल्कि भारत के सामान्य अपराधिक कानूनों की पद्धति के भी खिलाफ है। इस विधेयक का पास किया जाना, कानून स्थापित करने वाले लोगों द्वारा टॉर्चर के उपयोग पर जवाबदेही बढ़ाने के बजाय कन्वेनशन ऑफ टॉर्चर को इतनी देर से मानने की राजनैतिक घबराहट को छुपाने की कोशिश को दर्शाता है।

अगर सरकार का मकसद वास्तव में ही कन्वेनशन ऑफ टॉर्चर को मानने का है, तो निश्चित ही इस बिल में से उस भाग को निकालना होगा जो पुलिस अफसर के खिलाफ संज्ञान लेने की अवधि को 6 महीना बतलाता है।

(सौजन्यः टाईम्स ऑफ इन्डिया डॉट कॉम 31 मई 2010)

लोक पुलिस के इस अंक में कई लेख हैं। इन्हें पढ़ते हुए आपके मन में कई विचार उभरकर आए होंगे। हो सकता है आपकी राय में हमसे कुछ छूट गया हो या हमारा दृष्टिकोण निष्पक्ष न हो। हम आपके विचार जानना चाहेंगे। कृपया अपने विचार हमें भेजें। हम उन्हें आपके नाम या अज्ञात, जैसा आप चाहेंगे, लोक पुलिस में छापेंगे। आपकी राय महत्वपूर्ण है। आपकी राय ही बदलाव लाएगी।

सी.एच.आर.आई., नई दिल्ली कार्यालय
बी–११७, प्रथम तल, सर्वोदय एन्कलेव, नई दिल्लीः११००१७, भारत
टेलीः +९१ ११ ४३१८ ०२००, फैक्सः +९१ ११ २६८६ ४६८८, info@humanrightsinitiative.org, www.humanrightsinitiative.org